कविता का स्वरूप और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि

*डॉ. रेखा कुमारी पाण्डेय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना का केन्द्र बिन्दु कविता है। उन्होंने साहित्य का व्यापक अध्ययन किया और उसके सभी पक्षों पर लिखा. लेकिन वे मुख्यतः कविता के ही आलोचक हैं। उन्होंने आलोचना के दोनों पक्षों (सैद्धान्तिक और व्यवहारिक) में कविता की आलोचना को ही प्रमुखता दी। उन्होंने कविता की उन आदर्श स्थितियों को सामने रखा जिनसे पता चलता है कि कविता न केवल लोक-हृदय की भावनाओं को व्यक्त करती हैं, बल्कि उनके साथ हमारा रागात्मक संबंध भी स्थापित करती है। कविता संकीर्ण एवं संकुचित मानसिकता से बाहर निकलने में हमारी मदद करती है। वे कहते हैं कि "कविता ही मनुष्य को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भाव-भूमि पर ले जाती है। जहाँ जगत की नाना गतियों का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है।"

कविता के स्वरूप का विस्तार मनुष्य के जीवन और प्रकृति के विस्तार के साथ उसके संबंध के कारण होता है। शुक्ल जी यह मानते हैं कि कविता जीवन की सच्चाइयों से हमारा साक्षात्कार कराती है। उसमें केवल सुन्दर और सुखद स्थितियों का ही वर्णन नहीं होता, बल्कि कुरूप एवं कड़वी सच्चाई भी व्यक्त होती है। उनके अनुसार वही कविता सर्वांग पूर्णता को प्राप्त होती है जिसमें उन दोनों स्थितियों की अभिव्यक्ति होती है-

"कविता केवल वस्तुओं के रंग रूप में सौन्दर्य की छटा नहीं दिखाती, प्रत्युत् कर्म और मनोवृत्ति के भी अत्यंत मार्मिक दृश्य सामने रखती है। यह जिस प्रकार विकसित कमल, रमणी के मुखमंडल आदि का सौंदर्य मन में लाती है. उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मन में जगाती है। जिस प्रकार वह शव को नोचते हुए कुत्तों और श्रृंगालों के वीभत्स व्यापार की झलक दिखाती है उसी प्रकार क्रूरों की हिंसावृत्ति और दुष्टों की ईर्ष्या आदि की कुरूपता से भी क्षुब्ध करती है। इस कुरूपता का अवस्थान सौंदर्य की पूर्ण और स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए ही समझना चाहिए।

कविता एक व्यापक अभिव्यक्ति है। इसके स्वरूप की व्यापकता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इसे किसी निश्चित परिधि या परिभाषा में बाँधना न तो संभव है और न ही न्यायसंगत। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती विद्वानों से अलग और बेहतर परिभाषा दी है। इसे स्पष्ट करने के लिए कुछ भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों को देखना आवश्यक है।

कविता का स्वरूप

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कविता के स्वरूप को लेकर काफी सजग थे, क्योंकि वे इसकी व्यापकता से परिचित थे। वे जानते और स्वीकारते हैं कि साहित्य में और उसकी परिभाषा में परिवर्तनसीलता आवश्यक है। इसी बात को

ध्यान में रखते हुए 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"

चूँकि शुक्ल जी ने यह बात साहित्य के संदर्भ में कही है और कविता साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। अतः स्वभाविक है कि उनका यह विश्लेषण कविता के अर्थ एवं उसकी परिभाषा के संदर्भ में भी लागू होता है।

शुक्ल जी के पूर्ववर्ती या परवर्ती विद्वानों में जिन लोगों ने भी कविता के लिए एक निश्चित परिभाषा दी है। उन्होंने किसी न किसी रूप में उसकी एक सीमा को निर्धारित करने का प्रयास किया है। लेकिन यह तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि साहित्य की कोई भी परिभाषा शाश्वत नहीं हो सकती।

कहने का तात्पर्य है कि कविता के लिए निर्वैयक्तिकता आवश्यक है। कवि मात्र अपनी अनुभूतियों तक सीमित रह कर श्रेष्ठ काव्य की रचना नहीं कर सकता है। अतः वह अपनी अनुभूतियों से आगे जाकर संसार के साथ तादात्म्य स्थापित करेगा तभी श्रेष्ठ काव्य की रचना होगी। शुक्ल जी ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है

"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।"

शुक्ल जी ने कविता को जिस सहजता के साथ लोक-हृदय से जोड़ा है, वैसा साहित्य और आलोचना के इतिहास में शायद ही किसी ने किया हो। क्योंकि कविता की व्यापकता को समझने के लिए दृष्टि में जैसी व्यापकता, हृदय में भावुकता तथा साहित्य की गहरी सूझ चाहिए वह शुक्ल जी के चिंतन में विद्यमान है। शुक्ल जी की दृष्टि में काव्य साधना हृदय की मुक्ति की साधना है। अर्थात कविता हमें संकीर्ण मनोभावों से ऊपर उठाकर संसार के साथ हमारा रागात्मक संबंध स्थापित करती है। उन्होंने काव्य साधना को ज्ञान साधना के समकक्ष माना है। अर्थात् ज्ञान साधना में जिस प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय की एकता होती है उसी प्रकार भाव (काव्य) साधना में आश्रय और आलंबन की एकता होती है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है

"ज्ञान की जिस चरमसीमा पर जाकर ज्ञाता और श्रेय एक हो जाते हैं भाव की उसी चरमसीमा पर जाकर आश्रय और आलंबन एक हो जाते हैं।"

कविता के आधार

आचार्य शुक्ल मूलतः कविता के ही आलोचक है। अतः उन्होंने कविता के सौन्दर्य बोध, उसकी बनावट, विषय विश्लेषण, भायों के विश्लेषण, कल्पना एवं बिंबि-योजना आदि उसके आधारभूत तत्त्वों पर गहराई से विचार किया है। उन्होंने कविता के आधारों को प्रामाणिक एवं तर्कपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ये तत्व इस प्रकार हैं:

(i) **भाव**/भावयोग भाव शब्द का प्रयोग शुक्ल जी से पूर्व भी लोगों ने किया है जिसका उल्लेख हिन्दी साहित्य कोश में मिलता है। लेकिन शुक्ल जी ने भाव की जो परिभाषा दी है उसका आधार आधुनिक मनोविज्ञान है। उनके अनुसार भाव वेगयुक्त अटिल मानसिक अवस्था है जिसमें मन और शरीर दोनों की वृत्तियों काम करती हैं। उन्होंने लिखा है- भाव का अभिप्राय साहित्य में तात्पर्य बोध मात्र नहीं है बल्कि वह वेगयुक्त और अवस्था विशेष है। जिसमें शरीर-वृत्ति और मनो-वृत्ति दोनों प्रवृत्ति का योग रहता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कविता के लिए भाव भाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने इस भाव साधना को भारतीय चिंतन की परंपरा से जोड़ते हुए उसे भावयोग की संज्ञा दी है। साथ ही उसे कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष माना है। उनके अनुसार इस भाव योग की साधना से मनुष्य का हृदय स्वार्थ-संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठकर लोक-सामान्य की भावभूमि पर पहुंच जाता है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है ध्यान देने की बात है कि शुक्ल जी के अनुसार भावयोग की साधना से मनुष्य का हृदय स्वार्थ संबंधों के समुचित मंडल से ऊपर उठकर जयत से परे लोकोत्तर क्षेत्र में नहीं पहुंचता, ऊपर उठता है तो इसस संकुचित मजल के दायरे को तोड़कर लोक-सामान्य की भावभूमि पर पहुंचता है। इस लोक सामान्य की भूमि पर पहुंचना ही काव्य का उद्देश्य है। "लोक-सामान्य शब्द शुक्ल जी का पढ़ा हुआ है और इसमें साहित्य संबंधी उनकी मूल धारणा लिपटी हुई है।" भाव और मनोविकारों को लेकर शुक्ल जी ने विश्वप्रपंच की भूमिका, चिंतामणि तथा रसभीमांसा में बहुत कुछ लिखा है।

(ii) कल्पना

हम जानते हैं कि कल्पना से साहित्य का गहरा संबंध है। कविता का मूल आधार कल्पना ही है। शुक्ल जी ने काव्य की रचनात्मक साधना को भावयोग की संज्ञा दी है और 'उपासना' (कल्पना) को उसी भावयोग का एक अंग माना है। अध्यात्मक में 'उपासना' का अर्थ जिस ध्यान शब्द से लिया जाता है उसे शुक्ल ही कल्पना मानते है। उनके मतानुसार जिस प्रकार हम किसी भी उपासना के लिए उसका काल्पनिक चित्र मन में बनाते है और उससे समीपना का अनुभव करते है, उसी प्रकार रचनाकार कल्पना के सहारे किसी भाव को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। उन्होंने यह भी कहा है कि जिस रचनाकार के पास उदात्त कल्पना शक्ति नहीं होगी वह विषय के अनुसार कविता को सजीवता नही प्रदान कर सकेगा। उन्होंने लिखा है कि - ''जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भावों के प्रवर्तन के लिए भी भावना या कल्पना अपेक्षित होती है। जिनकी भावना या कल्पना शिथिल या अशक्त होती है, किसी कविता या सरस उक्ति को पढ सुनकर हृदय में मार्मिकता होते हुए भी वैसी अनुभूति नहीं होती।''

भारतीय काव्यशास्त्र में भी कल्पना का स्वरूप देखने को मिलता है। यहाँ पर अलंकार और रस-सिद्धान्त दोनों ही के लिए कल्पना को आवश्यक माना गया है। अलंकार-सिद्धांत के संदर्भ में उपमान-विधान के लिए तथा रस-सिद्धांत के संदर्भ में विभाव-विधान के लिए इसे महत्वपूर्ण माना गया है। लेकिन शुक्ल जी ने जिस नवीन दृष्टि का सूत्रपात किया उससे कविता के भाव-बोध में तो व्यापकता आई ही, साथ ही कविता के क्षेत्र और स्वरूप में भी व्यापकता आई। उन्होंने कविता के लिए कवि की कल्पनात्मक क्षमता और बोध के साथ-साथ पाठक या श्रोता की कल्पना शक्ति और भाव-बोध को महत्वपूर्ण माना है। जिसे हम पाठक की आस्वाद शक्ति (Literary भी कह सकते हैं। उनकी दृष्टि की व्यापकता का पता इस बात से चलता है कि ये काव्यशास्त्रीय मान्यताओं से बंधकर नहीं, बल्कि कविता किस प्रकार जीवन और जगत से जुड़ सके, इस बात को केन्द्र में रखकर सोचते हैं। उनका मानना है कि कल्पनात्मक क्षमता कवि में होनी चाहिए और यह आवश्यक भी है। लेकिन उससे कम आवश्यक यह भी नहीं है कि श्रोता या पाठक में भी उतनी ही कल्पना शक्ति होनी चाहिए, जिससे वह कविता की मूल भावना के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके। उन्होंने लिखा है-

"कल्पना दो प्रकार की होती है विधायक और ग्राहक । कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है और श्रोता या पाठक में अधिकतर ग्राहक। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ कवि पूर्ण चित्रण नहीं करता, वहाँ पाठक या श्रोता को भी अपनी ओर से कुछ मूर्तविधान करना पड़ता है।"

यदि पाठक या श्रोता में कल्पना शक्ति होगी तभी वह अपूर्ण अभिव्यक्ति होने पर भी मूल विषय तक पहुँचने

में सक्षम होगा।

(iii) काव्य-भाषा

जैसा कि डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने अपने एक लेख 'काव्य-भाषा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में लिखा है कि "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भाषा-विज्ञानी, भाषा शास्त्री या भाषा के दार्शनिक नहीं हैं। लेकिन 1904 से 1940 तक के उनके लेखन में इन सभी रूपों की झलक मिलती है। खास तौर से हिन्दी शब्द सागर' के संपादन काल से 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के संशोधित संस्करण के प्रकाशन (1940) तक. उन्होंने लगातार भाषा संबंधी चिंतन किया है। वे मुख्यतः साहित्य के समालोचक और इतिहासकार हैं, इसलिए उनका भाषा-चिंतन एक समालोचक और इतिहासकार का भाषा-चिंतन है। उनकी भाषा चिंता के केन्द्र में साहित्य की भाषा है। उनका भाषा चिंतन साहित्य विवेक से अनुशासित है और साहित्य-विवेक उनकी व्यापक सामाजिक चेतना से।" गृह बात सही एवं सटीक मालूम होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक आलोचक ही नहीं निर्माता भी हैं। एक ऐसी काव्य भाषा दृष्टि के चिंतक और निर्माता हैं जो जन-भावना से जुड़ती हो। उन्होंने काव्य के भाव-पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष पर भी विचार किया। शुक्ल जी कविता के लिए लोक -भाषा एवं बोल-चाल की भाषा की सहज, सरल एवं साभिप्राय अभिव्यक्ति पर बल देते हैं। उन्होंने लिखा है - ''कविता में कहीं गई बात चित्र रूप में हमारे सामने आनी चाहिए । अत: उसमें गोचर रूपों का विधान अधिक होता है। वह प्राय: ऐसे रूपों ओर व्यापारों को ही लेती है जो स्वाभाविक होते है और संसार में सबसे अधिक मनुष्यों को सबसे अधिक दिखाई पड्ते है।

कविता की भाषा को लेकर शुक्ल जी ने जिस गहराई से विचार किया है, भारतीय साहित्य-चिंतन में शायद ही किसी की दृष्टि वहाँ तक पहुँची हो। शुक्ल जी ने कविता में भी 'अभिधा', 'शब्द शक्ति' के प्रयोग पर ही बल दिया है और लक्षण तथा व्यंजना को सहायक माना है।

(iv) बिंब-योजना

काव्य में बिंब-योजना का तात्पर्य है कवि जिस वस्तु या दृश्य की अभिव्यक्ति करता है उसका पूरा चित्र कवि के मानस में उभरना। शुक्ल जी की मान्यता है कि भाव को मूर्त रूप प्रदान करने में बिब सहायक होता है अतः कविता में उसका विशेष महत्व होता है। उन्होंने लिखा है कि "काव्य का काम कल्पना में बिंब (Imege) या मूर्त भावना उपस्थित करना है, बुद्धि के सामने कोई विचार (Concept) लाना नहीं।" शुक्ल जी के अनुसार कविता की रचना प्रक्रिया में बिंब का इसलिए महत्व है कि बिंब अगोचर दृश्य को भी गोचर रूप में सामने लाते हैं। शुक्ल जी जानते हैं कि काव्य के जो भी आधार तत्व हैं उनका प्रयोग भी ठीक ढंग से श्रेष्ठ कवि ही कर सकता है।

***राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,**
जयपुर परिसर, जयपुर

संदर्भ ग्रंथ

1. चिंतामणि, भाग 1, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा- 1992, पृ151-52
2. वही पृ. 110
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-1994, पृ. 1
4. चिन्तामणि भाग'1, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा- 1992, पृ. 93

5. गोस्वामी तुलसीदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-1976, पृ. 66
6. हिन्दी आलोचना राजकमल प्रकासन, दिल्ली-1975, पृ. 56
7. रसमीमांसा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी -1991, पृ. 18
8. चिंतामणि, भाग-1, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा- 1992, पृ. 107
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भाषा-विंचतन, हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर-1986,पृ. 76
10. रसमीमांसा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी -1991, पृ. 29
11. चिंतामणि, भाग - 1 हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा- 1992, पृ. 151-52